[८७]

तप और दीक्षा

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥
॥ १९ । ४१ । १ ॥

पदार्थ—(भद्रम्) कल्याण श्रेष्ठ वस्तु' (इच्छन्त) चाहते हुए (स्वर्विद) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषय) ऋषियो 'वेदार्थ जानने वालों' ने (तप) तप 'ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदाध्ययन जितेन्द्रिय आदि' और (दीक्षाम्) दीक्षा नियम और व्रत की शिक्षा' का (अग्रे) पहले (उपनिषेदु) अनुष्ठान किया है। (तत) उस से (राष्ट्रम्) राज्य (बलम्) बल 'सामर्थ्य' (च) और (ओज) पराक्रम (जातम्) सिद्ध हुआ है (तत्) उस 'कल्याण' को (अस्मै) इस पुरुष के लिये (देवा) विद्वान् लोग (उपसनमन्तु) झुका देवें।

भावार्थ—विद्वान् लोगो ने पराक्रम से पहले वेदाध्ययन जितेन्द्रियता आदि तप का अभ्यास करके महासुख पाया है, इस लिये आप लोग प्रयत्न करें कि सब मनुष्य विद्वान् होकर महासुख को प्राप्त होवें।

[८८]

ईश्वर का विराट् रूप

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युता पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ १९ । ४४ । ५ ॥

पदार्थ.—'हे परमात्मन् !' तू (सिन्धो.) समुद्र का (गर्भ) गर्भ 'उदर समान आधार' और (विद्युताम्) प्रकाश वालो का (पुष्पम्) 'विकास फैलाव रूप' (असि) है। (वातः) पवन (प्राणः) 'तेरा' प्राण 'श्वास' (सूर्य) सूर्य (चक्षुः) 'तेरा' नेत्र है और (दिवः) आकाश (पयः) 'तेरा' अन्न है।

भावार्थ—मनुष्य विराट् रूप परमात्मा को सर्व नियन्ता जान कर सदा पुरुषार्थ करें।

[८६]

मैं सर्वथा निष्पाप बनूं

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं
मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो
मे व्यानो ऽयुतो ऽहं सर्वः ॥ १६ । ५१ । १ ॥

पदार्थः—(ग्रहम्) मे (ग्रयुतः) अनिन्दित 'प्रशसा युक्त होऊं' (मे) मेरा (ग्रात्मा) आत्मा 'जीवात्मा' (ग्रयुतः) ग्रनिन्दित (मे) मेरी (चक्षुः) ग्राख (ग्रयुतम्) अनिन्दित (मे) मेरा (श्रोत्रम्) कान (ग्रयुतम्) ग्रनिन्दित (मे) मेरा (प्राणः) प्राण 'भीतर जाने वाला श्वास' (ग्रयुतः) अनिन्दित (मे) मेरा (ग्रपानः) अपान 'बाहिर जाने वाला श्वास' (ग्रयुतः) ग्रनिन्दित (मे) मेरा (व्यानः) व्यान 'सब शरीर में घूमने वाला वायु' (ग्रयुतः) ग्रनिन्दित 'होवे' (सर्वः) सब का सब (ग्रहम्) मैं (ग्रयुतः) ग्रनिन्दित 'होऊं'।

भावार्थः—जो मनुष्य ग्रपने ग्रापे, ग्रपने ग्रात्मा, ग्रपने इन्द्रियों, ग्रपने ग्रङ्गों ग्रौर ग्रपने सर्वस्व से सदा प्रशसनीय कर्म करते हैं वे ही ग्रात्मोन्नति कर सकते हैं।

[९०]

ज्ञानी समय का सदुपयोग करते हैं

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेता. ।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य
चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १९ । ५३ । १ ॥

पदार्थ—(सप्तरश्मि.) सात प्रकार की किरणों वाले सूर्य 'के समान प्रकाशमान' (सहस्राक्ष) सहस्रों नेत्र वाला (अजर) बूढा न होने वाला (भूरिरेता) बड़े रस वाला (काल) काल 'समय रूपी' (अश्व) घोड़ा (वहति) चलता रहता है। (तम्) उस पर (कवय.) ज्ञानवान् (विपश्चित) बुद्धिमान् लोग (आ रोहन्ति) चढ़ते हैं (तस्य) उस 'काल' के (चक्रा) चक्र अर्थात् घूमने के स्थान (विश्वा) सब (भुवनानि) सत्ता वाले हैं।

भावार्थ—महाबलवान् काल सर्वत्र व्यापी और अति शीघ्रगामी, शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण किरणों वाले सूर्य के समान प्रकाशमान है, उस काल को बुद्धिमान् लोग सब अवस्थाओं मे घोड़े के समान सहायक जान कर अपना कर्तव्य सिद्ध करते हैं।

[६१]

सुख प्राप्ति

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१६।६१।१॥

पदार्थः—(मे) अपने (तन्वा) शरीर के साथ (तनू') 'दूसरों के' शरीरों को (सहे) में सहारता हूँ (दतः=दत्तः) रक्षा किया हुआ मैं (सर्वम्) पूर्ण (आयु) जीवन (अशीय) प्राप्त करूं (मे) मेरे लिये (स्योनम्) सुख से (सीद) तू बैठ (पुरु') पूर्ण होकर (स्वर्गे) स्वर्ग 'सुख पहुँचाने वाले स्थान' में (पवमानः) चलता हुआ तू 'हमें' (पृणस्व) पूर्ण कर ।

भावार्थ —मनुष्यों को योग्य है कि आप सब की रक्षा करके अपनी रक्षा करें और विद्या और पराक्रम में पूर्ण होकर सब को विद्वान् और पराक्रमी बना कर आप सुखी होवें और सब को सुखी करें ।

[६२]

मुझे सब का प्रिय बना

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्ये ॥ १६।६२।१ ॥

पदार्थ—'हे परमात्मन्' ! (मा) मुझे (देवेषु) ब्राह्मणो 'ज्ञानियों' मे (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर (मा) मुझे (राजसु) राजाओं मे (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (उत) और (आर्ये) वैश्य मे (उत) और (शूद्रे) शूद्र मे और (सर्वस्य) सब (पश्यतः) देखने वाले 'जीव' का (प्रियम्) प्रिय 'कर'।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मण आदि से निष्पक्ष होकर प्रीति करता है, वैसे ही विद्वानो को सब ससार से प्रीति करनी चाहिये।

[६३]

वेदानुसार कर्म

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १६।६८।१ ॥

पदार्थः—(अव्यसः) अव्यापक "जीवात्मा" के (च च) और (व्यचसः) व्यापक 'परमात्मा' के (बिलम्) बिल 'भेद' को (मायया) बुद्धि से (विष्यामि) मैं खोलता हूँ (अथ) फिर (ताभ्याम्) उन दोनों के जानने के लिए (वेदम्) 'ऋग्वेदादि' ज्ञान को (उद्धृत्य) ऊंचा लाकर (कर्माणि) कर्मों को (कृण्महे) हम करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्य जीवात्मा के कर्त्तव्य और परमात्मा के अनुग्रह समझने के लिये वेदों को प्रधान जानकर अपना अपना कर्त्तव्य करते रहें ।

[६२]

मुझे सब का प्रिय बना

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्ये ॥ १९।६२।१ ॥

पदार्थ—'हे परमात्मन्' ! (मा) मुझे (देवेषु) ब्राह्मणों 'ज्ञानियों' में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर। (उत) और (आर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र में और (सर्वस्य) सब (पश्यत.) देखने वाले 'जीव' का (प्रियम्) प्रिय 'कर'।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मण आदि से निष्पक्ष होकर प्रीति करता है, वैसे ही विद्वानों को सब संसार से प्रीति करनी चाहिये।

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला

स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

पुष्प-६

[६३]

वेदानुसार कर्म

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १९।६८।१ ॥

पदार्थः—(अव्यस.) अव्यापक "जीवात्मा" के (च च) और (व्यचस.) व्यापक 'परमात्मा' के (बिलम्) बिल 'भेद' को (मायया) बुद्धि से (विष्यामि) मैं खोलता हूँ (अथ) फिर (ताभ्याम्) उन दोनो के जानने के लिए (वेदम्) 'ऋग्वेदादि' ज्ञान को (उद्धृत्य) ऊंचा लाकर (कर्माणि) कर्मों को (कृण्महे) हम करते हैं।

भावार्थः—मनुष्य जीवात्मा के कर्तव्य और परमात्मा के अनुग्रह समझने के लिये वेदों को प्रधान जानकर अपना अपना कर्तव्य करते रहें।

[६४]

विघ्नों को हटाता हुआ आगे बढ़

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्व विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ २०।५।१३॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे इन्द्र ! 'परम ऐश्वर्य वाले राजन् !' (ओजसा) अपने बल से (विश्वस्य) सबका (ईशान) स्वामी (त्वम्) तू (पुर) सामने से (प्र इह) आगे बढ़। (वृत्रहन्) हे वैरियों के नाश करने वाले (वृत्राणि) वैरियों को (जहि) नाश कर।

भावार्थ —मनुष्य महाबली होकर आगे बढ़ता हुआ विघ्नों को मिटावे।

[६५]

धनवान् बनो

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥

॥ २० । १७ । १० ॥

पदार्थ—(पुरुहूत) हे बहुतों से बुलाये गये 'राजन् !' (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गति वाली (अमतिम्) कुमति वा कगाली' को और (यवेन) अन्न से (विश्वाम्) सब (क्षुधम्) भूख को (तरेम) हम हटावें । (वयम्) हम (राजभिः) राजाओं के साथ (प्रथमा) प्रथम श्रेणी वाले होकर (धनानि) अनेक धनों को (अस्माकेन) अपने (वृजनेन) बल से (जयेम) जीतें ।

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करके विद्याओं द्वारा कुमति और निर्धनता हटा कर भोजन पदार्थ प्राप्त करें और अपने भुजबल से महाधनी होकर राजाओं के साथ प्रथम श्रेणी वाले होवें ।

[१६]

सर्वोत्पादक प्रभु की उपासना

यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गाव
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्य य उषस जजान यो अपा नेता
स जनास इन्द्र ॥ २० । ३४ । ७ ॥

पदार्थ —(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) बड़ी आज्ञा मे (अश्वास) घोड़े (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (गाव) गाय बैल आदि पशु (यस्ये) जिसकी 'आज्ञा' मे (ग्रामा) गाव 'मनुष्य समूह' और (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (विश्वे) सब (रथास) विहार करने वाले पदार्थ हैं। (य) जिसने (सूर्यम्) सूर्य को (य) जिसने (उषसम्) प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न किया है और (य) जो (अपाम्) जला का (नेता) पहुँचाने वाला है (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र 'बडे ऐश्वर्य वाला परमेश्वर है।'

भावार्थ —जिस परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से सब उपकारी जीव और पदार्थ उत्पन्न हुये हैं उस जगदीश्वर की उपासन करके मनुष्य उपकार करें।

[६७]

परमात्मा की पूजा

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न धृष्ण्वर्चत ॥ २०।७२।८ ॥

पदार्थ—(प्रियमेधास) हे प्यारी 'हितकारिणी' बुद्धि वाले पुरुषो ! (धृष्णु) निर्भय (पुरम् न) गढ़ के समान 'उस परमेश्वर' को (अर्चत) पूजो (प्र) अच्छे प्रकार (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (उत) और (पुत्रका) गुणी सन्तान उसको (अर्चन्तु) पूजें ।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने पुत्र पुत्रियों सहित प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक कर्म में परमात्मा की शक्ति को निहार कर आत्मा की उन्नति करें ।

[६६]

सर्वोत्पादक प्रभु की उपासना

यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गाव
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्यं य उपस जनान यो अपा नेता
स जनास इन्द्र ॥ २० । ३४ । ७॥

पदार्थ —(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) बडी आज्ञा मे (अश्वास) घोडे (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (गाव) गाय बैल आदि पशु (यस्य) जिसकी 'आज्ञा' मे (ग्रामा) गाव 'मनुष्य समूह' और (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (विश्वे) सब (रथास) विहार करने वाले पदार्थ हैं। (य) जिसने (सूर्यम्) सूर्य को (य) जिसने (उपसम्) प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न किया है और (य) जो (अपाम्) जलो का (नेता) पहुँचाने वाला है (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र 'बडे ऐश्वर्य वाला परमेश्वर है।'

भावार्थ —जिस परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से सब उपकारी जीव और पदार्थ उत्पन्न हुये हैं उस जगदीश्वर की उपासना करके मनुष्य उपकार करें।

[६७]

परमात्मा की पूजा

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ २०।७२।५ ॥

पदार्थ —(प्रियमेधासः) हे प्यारी 'हितकारिणी' बुद्धि वाले पुरुषो ! (धृष्णु) निर्भय (पुरम् न) गढ़ के समान 'उस परमेश्वर' को (अर्चत) पूजो (प्र) अच्छे प्रकार (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (उत) और (पुत्रकाः) छोटी सन्तानें 'उसको' (अर्चन्तु) पूजें ।

भावार्थ —मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने पुत्र पुत्रियों सहित प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक कर्म में परमात्मा की शक्ति को निहार कर आत्मा की उन्नति करें ।

[१६]

सर्वोत्पादक प्रभु की उपासना

यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गाव
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास.।
य सूर्यं य उषस जजान यो अपा नेता
स जनास इन्द्र ॥ २० । ३४ । ७॥

पदार्थ — (यस्य) जिसकी (प्रदिशि) बडी आज्ञा मे (अश्वास) घोडे (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (गाव) गाय बैल आदि पशु (यस्ये) जिसकी 'आज्ञा' मे (ग्रामा) गाव 'मनुष्य समूह' और (यस्य) जिस की 'आज्ञा' मे (विश्वे) सब (रथास) विहार करने वाले पदार्थ हैं। (य) जिसने (सूर्यम्) सूर्य को (य) जिसने (उषसम्) प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न किया है और (य) जो (अपाम्) जलो का (नेता) पहुँचाने वाला है (जनास) हे मनुष्यो ! (स) वह (इन्द्र) इन्द्र 'बडे ऐश्वर्य वाला परमेश्वर है।'

भावार्थ —जिस परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से सब उपकारी जीव और पदार्थ उत्पन्न हुये हैं उस जगदीश्वर की उपासन करके मनुष्य उपकार करें।

[६७]

परमात्मा की पूजा

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ २०।७२।५ ॥

पदार्थ.—(प्रियमेधास:) हे प्यारी 'हितकारिणी' बुद्धि वाले पुरुषो ! (धृष्णु) निर्भय (पुरम् न) गढ़ के समान 'उस परमेश्वर' को (अर्चत) पूजो (प्र) अच्छे प्रकार (अर्चत) पूजो, (अर्चत) पूजो, (उत) और (पुत्रका:) गुणी सन्तानें 'उसको' (अर्चन्तु) पूजें ।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने पुत्र पुत्रियों सहित प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक कर्म में परमात्मा की शक्ति को निहार कर आत्मा की उन्नति करें ।

[६८]

तू ही मां तू ही पिता

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २० । १०८ । २ ॥

पदार्थ—(वसो) हे बसाने वाले! (शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्मों वाले 'परमेश्वर' (त्वम्) तू ही (नः) हमारा (पिता) पिता और (त्वम्) तू ही (माता) माता (बभूविथ) हुआ है (अध) इसलिये (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम मांगते हैं।

भावार्थ—परमेश्वर सदा से सब सृष्टि का पालन पोषण करता है हम उसी से प्रार्थना करके पुरुषार्थ के साथ सुखी होवें।

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

संवत् १९४३ में दिवारपुर सिन्ध में प्रसिद्ध गोभक्त श्री हासानन्द जी के गृह को एक बालक ने अपने आलोक से आलोकित किया। यही बालक आगे चलकर गोविन्दराम हासानन्द के नाम से विख्यात हुए।

जिस समय आपकी आयु केवल १७ वर्ष ही थी आप के पिता जी सर्वात्मना गोरक्षा में लग गये और गृहस्थ का भार इन पर डाल दिया गया।

कलकत्ता में आजीविका का कार्य करते हुए कुछ मित्रों के संसर्ग से आपका झुकाव आर्य समाज की ओर हो गया। आर्य समाज के प्रति उनका यह प्रेम प्रतिदिन बढ़ता ही गया और इसी प्रेम के कारण अन्त में उन्हें घर से निकलना पड़ा।

आपको साहित्य प्रचार की लग्न और धुन आरम्भ से थी। जब आपने अपने मित्र के साथ कलकत्ते में स्वदेशी कपड़े की दुकान खोली तो वहां न केवल वैदिक साहित्य ही रखते थे अपितु वेद

मैंमो के पीछे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश का विज्ञापन भी बंगला भाषा में छपा देते थे।

श्री गोविन्दराम जी अनेक वर्षों तक आर्य समाज कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता के सभासद रहे। समाज का कार्य करते हुए उन्होंने अनुभव किया कि मौखिक प्रचार के साथ साहित्य प्रचार होना भी आवश्यक है। यह विचार उठते ही आप ने अपने मित्रों की सहायता से आरम्भ में आर्य नेताओं के चित्र तथा नमस्ते आदि के मोटो छपवाये फिर दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश छपवाया। पहले सत्यार्थ प्रकाश का का मूल्य ढाई रुपया था और फिर भी ग्रन्थ मिलता नहीं था। आप ने मूल्य केवल एक रुपया रक्खा। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश अल्प मूल्य में मिलने लगा। इस सबका श्रेय आप को ही है।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन के पश्चात् तो आप ने साहित्य की एक बाढ़ सी ला दी। अपने कार्य-क्षेत्र को अधिक विस्तृत करने के लिये आप १९३९ में देहली आये और मृत्यु पर्यन्त देहली में ही रहे।

वैदिक साहित्य के प्रकाशन में पग पग पर कठिनाइयां आईं अन्य प्रकाशक मैदान छोड़ कर भाग गये परन्तु आप एक दृढ़ चट्टान की भांति अटल रहे।

आपने वैदिक साहित्य का प्रकाशन ही नही किया अपितु अनेक व्यक्तियों को लिखने के लिये प्रोत्साहित भी किया। मैं भी साहित्य क्षेत्र जो कुछ कर सका हूँ और कर रहा हूँ इस का श्रेय श्री गोविन्दराम जी को ही है। अपने उत्तराधिकारी के रूप में वे आर्य जगत् के लिये श्री विजय कुमार जी को छोड़ गये हैं जो उनके ही पद चिह्नों पर चलते हुए आर्य साहित्य के प्रकाशन में संलग्न हैं।

३३ वर्ष तक निरन्तर साहित्य सेवा करते हुए ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त, आर्य समाज का दीवाना तथा वैदिक साहित्य के लिये तन मन और धन को न्यौछावर करने वाला यह आर्यवीर २५ फरवरी १९६० को ऋषि बोधोत्सव के दिन ब्रह्म-मुहूर्त में परलोक वासी हो गये। परन्तु कौन कहता है कि गोविन्दराम जी मर गये। डाक्टर सूर्यदेव जी के शब्दों में—

दयानन्द के भक्त दृढ़, हा प्रिय गोविन्दराम।
आर्य जगत में रहेगा सदा आप का नाम॥

"विद्यार्थी"

क्या आप अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहते हैं ? क्या आप अपने परिवार को स्वर्गधाम बनाना चाहते हैं ? क्या आप समाज में प्रेम की गङ्गा बहाना चाहते हैं ? क्या आप राष्ट्र में एकता उत्पन्न करना चाहते हैं ? क्या आप विश्व में शान्ति स्थापित करना चाहते हैं ? क्या आप मानवमात्र को, नहीं, नहीं प्राणीमात्र को सुखी करना चाहते हैं ? यदि हां तो आज ही अपने घर में

वेद मन्दिर

की स्थापना कीजिये। वेद प्रभु प्रदत्त वह दिव्य रसायण है जिसके सेवन से मनुष्य शरीर, मन और आत्मा से बलिष्ठ बनता है। वेद का स्वाध्याय जीवन में नव स्फूर्ति, उल्लास और चेतना उत्पन्न करता है। इसके स्वाध्याय से व्यक्ति सच्चे अर्थों में मानव= आर्य बनता है।

प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय कीजिये, उसके अर्थों को समझिये और तदनुसार अपने जीवन का निर्माण कीजिये।

—※※※—

[१]

गो हत्यारे को दण्ड

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नो ऽसो अवीरहा ॥
॥ १ । १६ । ४ ॥

पदार्थ —(यदि) जो (नः) हमारी (गाम्) गाय का, (यदि) जो (अश्वम्) घोडे को और यदि जो (पुरुषम्) पुरुष को (हंसि) तू मारता है (तम् त्वा) उस तुझको (सीसेन) बन्धन काटने हारे सामर्थ्य 'ब्रह्मज्ञान' से (विध्याम.) हम वेधते हैं (यथा) जिससे तू (नः) हमारे (अवीरहा असः) वीरो का नाश करने हारा न होवे।

भावार्थः—मनुष्य वर्तमान क्लेशो को देखकर आने वाले क्लेशो को यत्न पूर्वक रोक कर आनन्द भोगे।

[२]

मधुरता

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥

॥ १ । ३४ । ३ ॥

पदार्थ —(मे) मेरा (निक्रमणम्) पास आना (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला वा रस से भरा हुआ और (मे) मेरा (परायणम्) बाहिर जाना (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला वा रस भरा हुआ होवे। (वाचा) वाणी से मैं (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला वा रस युक्त (वदामि) बोलूं और मैं (मधु सदृश) ज्ञान रूप वाला वा मधुर रूप वाला (भूयासम्) रहूं।

भावार्थ —जो मनुष्य घर, सभा, राजद्वार, देश, परदेश आदि में आने जाने, निरीक्षण, परीक्षण, अभ्यास आदि समस्त चेष्टाओं और वाणी से बोलने अर्थात् शुभ गुणों के ग्रहण और उपदेश करने में (मधुमान्) ज्ञानवान् वा रस से भरे अर्थात् प्रेम में मग्न होते हैं, वही महात्मा (मधुसन्दृश) रसीले रूप वाले अर्थात् संसार भर में शुभ कर्मी होकर उपकार करते हैं।

[३]

ओषधियों का ओषधि

आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥

॥ २ । ३ । २ ॥

पदार्थ.—(अङ्ग) हे अङ्ग ! (अङ्ग) हे 'ब्रह्म' ! (आत्) फिर (कुवित्) अनेक प्रकार से (या = यानि) जो (ते) तेरी 'बनाई' (शतम्) सौ 'असंख्य' (भेषजानि) भय निवर्त्तक ओषधे हैं (तेषाम्) उनमे से (त्वम्) तू आप (उत्तमम्) उत्तम गुण वाला (अनास्रवम्) बडे क्लेश का हटाने वाला और (अरोगम्) रोग दूर करने वाला (असि) है।

भावार्थः—ससार की सब ओषधियो मे क्लेश नाशक और रोग निवर्त्तक शक्ति का देने वाला वही ओषधियों का ओषधि परब्रह्म है।

[४]

प्रकाशमान बन और प्रकाश फैला

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा
ऋषयो यानि सत्या ।
स दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि
प्रदिशश्चतस्र ॥२।६।१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वन्! (समा) अनुकूल (ऋतव) ऋतुए और (ऋषय) ऋषि लोग और (यानि) जो (सत्या=सत्यानि तानि) सत्य कर्म हैं वे सब (त्वा) तुझको (वर्धयन्तु) बढ़ावें। (दिव्येन) अपनी दिव्य वा मनोहर (रोचनेन) झलक से (सम्) भले प्रकार (दीदिहि) प्रकाशमान हो और (विश्वा) सब (चतस्रा) चारों (प्रदिश) महा दिशाओं को (आभाहि) प्रकाशमान कर।

भावार्थ—मनुष्य बड़े प्रयत्न से अपने समय को यथावत् उपयोग से अनुकूल बनावें ऋषि आप्त पुरुषों से मिलकर उत्तम शिक्षा प्राप्त कर और सत्य संकल्पी, सत्यावादी और सत्कर्मी सदा रहें। इस प्रकार संसार में उन्नति करें और कीर्तिमान होकर प्रसन्न चित्त रहें।

Second Copy

॥ ओ३म् ॥

श्री गोविन्दराम हासानन्द स्मृतिमाला पु० ६

अथर्ववेद शतकम्

अथर्ववेद के सौ मन्त्रों का अनूठा एवं अपूर्व संकलन

संकलनकर्ता तथा सम्पादक
प्र० जगदीशचन्द्र 'विद्यार्थी'
विद्यावाचस्पति

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

[५]

प्रगतिशील आनन्द पाते हैं

स्तरूयोऽसि प्रतिरुरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति सम क्राम ॥ २।११।२ ॥

पदार्थः—तू (स्तरूयः) गतिशील (असि) है (प्रतिगरः) प्रत्यक्ष चलने वाला (असि) है और (प्रत्यभिचरणः) अभिचार 'दुष्टकर्म' का हटाने वाला (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी 'परमेश्वर वा मनुष्य' को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर (समम्) तुल्य बल वाले 'मनुष्य' से (अति=अतीत्य) बढ़कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ।

भावार्थः—जो पुरुषार्थी मनुष्य निष्कपट, सरल स्वभाव होकर अग्रगामी होता है वह संकटों को हटा कर आनन्द प्राप्त करता है।

[६]

पत्थर समान शरीर

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥
॥ २ । १३ । ४ ॥

पदार्थ—'हे ब्रह्मचारिन्' (एहि=आ+इह) तू आ, (अश्मानम्) इस शिला पर (आ+तिष्ठ) चढ, (ते) तेर (तनूः) तन 'शरीर' (अश्मा) शिला 'शिला जैसा दृढ' (भवतु) होवे। (विश्वे) सब (देवा) उत्तम गुण वाले 'पुरुष और पदार्थ' (ते) तेरी (आयु) आयु को (शतम्) सौ (शरद) शरद् ऋतुओं तक (कृण्वन्तु) 'दीर्घ' करें।

भावार्थ—ब्रह्मचारी को शिक्षा दें कि वह यथा नियम पथ्य सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य और पौरुष करके अपने शरीर को दृढ और स्वस्थ रक्खे और विद्वानों के मेल और उत्तम पदार्थों के सेवन से पूर्णायु भोग कर ससार मे उपकार करे।

[७]

निर्भयता

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ २ । १५ । १ ॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (न) निश्चय करके (द्यौः) आकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते हैं और (न) न (बिभीतः) डरते हैं (एव) ऐसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर।

भावार्थः—यह आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम शासन से अपने अपने स्थान और मार्ग में स्थिर रहकर जगत् का उपकार करते हैं ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापों को छोड़ कर और सुकर्मों को करके सदा निर्भय और सुखी रहता है।

[८]

राजा का चुनाव

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः
प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न
उग्रो वि भजा वसूनि ॥ ३ । ४ । २ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (त्वाम्) तुझको (राज्याय) राज्य के लिये (विश.) प्रजायें और (त्वाम्) तुझको ही (इमाः) यह सब (पञ्च) विस्तीर्ण वा पाच (देवी.) दिव्य गुण वाली (प्रदिश.) महादिशाए (वृणताम्) स्वीकार करें । (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन्) ऐश्वर्य युक्त वा ऊचे (ककुदि) शिखर पर (श्रयस्व) आश्रय ले । (तत) फिर (उग्र.) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) धनो का (वि, भज) विभाग कर ।

भावार्थ—राजा को सब प्रजागण चुनें और सब मनुष्य आदि प्रजा और चारो पूर्वादि दिशाओ और पाचवी ऊपर नीचे की दिशा के पदार्थ [जैसे आकाश मार्ग और भूगर्भ आदि के पदार्थ] सब राजा के आधीन रहे और वह बडा ऐश्वर्यवान् होकर राजभक्त सुपात्रों को विद्या और सुवर्ण आदि धनो का दान करता रहे ।

[६]

गृहपत्नी के कर्तव्य

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य
धाराममृतेन संभृताम्।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टा-
पूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ३।१२।८॥

पदार्थ—(नारि) हे घर का हित करने वाली गृहपत्नी। (एतम्) इस (पूर्णम्) पूरे (कुम्भम्) घड़े में से (अमृतेन) अमृत 'हितकारी पदार्थ' से (संभृताम्) भरी हुई (घृतस्य) घी की (धाराम्) धारा को (प्र भर) अच्छे प्रकार ला। (इमाम्) इस 'शाला' को और (पातॄन्) पान करनेवालों या रक्षकों को (अमृतेन) अमृत से (सम्) अच्छे प्रकार (अङ्ग्धि) पूर्ण कर (इष्टापूर्तम्) यज्ञ और वेदों का अध्ययन, अन्न दानादि पुण्य कर्म (एनाम्) इस 'शाला' को (अभि) सब ओर से (रक्षाति) रक्षा करे।

भावार्थ—गृहपत्नी घर को घृत, दुग्धादि अमृत पदार्थों से परिपूर्ण रख कर सब कुटुम्बियों को स्वस्थ और पुष्ट रक्खे और सब स्त्री पुरुष धार्मिक पुरुषार्थी और धनी होकर चोर उचक्के ठगादि दुष्टों से रक्षा करते हुए बस्ती को बसाये रक्खें।

[१०]

खूब कमा

शतहस्त समाहर सहस्र हस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥
॥ ३। २४। ५॥

पदार्थ —(शतहस्त) हे सैकड़ो हाथो वाले ! 'मनुष्य ! धान्य को' (समाहर) बटोर कर ला और (सहस्रहस्त) हे सहस्रो हाथो वाले ! (सम्) अच्छे प्रकार से (किर) फैला (च) और (कृतस्य) किये हुए और (कार्यस्य) कर्तव्य कर्म की (स्फातिम्) बढ़ती को (इह) यहा पर (समावह) मिला कर ला।

भावार्थ —मनुष्य सैकडो और सहस्रो प्रकार से कर्म कुशल होकर और सहस्रो कर्म कुशलो से मिल कर धन धान्य एकत्रित करे और उत्तम कर्मों मे व्यय करके आगा पीछा सोच कर सदैव उन्नति करता रहे।

[११]

आदर्श गृहस्थ

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

॥ ३। ३०। २॥

पदार्थः—(पुत्रः) कुल शोधक पवित्र, बहु रक्षक था नरक से बचाने वाला पुत्र 'सन्तान' (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल व्रती होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) जैसे मधु में सनी और (शान्तिवाम्) शान्ति से भरी (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

भावार्थ.—सन्तान माता पिता के आज्ञाकारी और माता पिता सन्तानों के हितकारी, पत्नी और पति आपस मे मधुर भाषी और सुखदायी हो। यही वैदिक कर्म आनन्द मूल है।

[१२]

भाई बहन द्वेष न करें

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥
॥ ३ । ३० । ३ ॥

पदार्थ—(भ्राता) भ्राता (भ्रातरम्) भ्राता से (मा द्विक्षत्) द्वेष न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहन से भी (मा) नहीं। (सम्यञ्च) एक मत वाले और (सव्रता) एक व्रती (भूत्वा) होकर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाचम्) वाणी (वदत) बोलो।

भावार्थ—भाई भाई, बहिन बहिन और सब नियम पूर्वक मेल से वैदिक रीति पर चल कर सुख भोगें।

[१३]

रोग और शत्रु नाश

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥
॥ ४ । ३ । ४ ॥

पदार्थः—(दत्वताम्) दांतों वाले में से (प्रथमम्) पहले (व्याघ्रम्) बाघ (आत् उ) और भी (अहिम्) सांप, (अथो) और भी (वृकम्) भेड़िये (स्तेनम्) चोर (अथो) और भी (यातुधानम्) पीड़ा देने वाले राक्षस को (वयम्) हम (जम्भयामसि) नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक दुष्ट जन्तुओं और उनके समान दुष्ट स्वभाव वाले चोर डाकुओं और रोगों तथा दोषों को नष्ट करें ।

[१४]

ईश्वर प्राप्ति से दुःख निवृत्ति

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥
॥ ४ । ६ । ५ ॥

पदार्थ—(न) न तो (एनम्) इस 'पुरुष' को (शपथ) क्रोध वचन (न) न (कृत्या) हिंसा क्रिया और (न) न (अभिशोचनम्) महाशोक (प्राप्नोति) पहुँचता है और (न) न (एनम्) इसको (विष्कन्धम्) विघ्न (अश्नुते) व्यपता है, (य.) जो 'पुरुष' (आञ्जन) हे संसार को व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! (त्वा) तुझे को (बिभर्ति) धारण करता है।

भावार्थ—जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा को आत्मा में स्थिर करता है उसको आध्यात्मिक शान्ति होने से आधिभौतिक और आधिदैविक शान्ति भी मिलती है।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है
वेद का पढ़ना पढ़ाना और
सुनना सुनाना सब आर्यों का
परम धर्म है

'महर्षि दयानन्द'

प्रथम संस्करण १९६१

मूल्य एक रुपया

प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली।
मुद्रक अनिल प्रिंटिंग एजेन्सी
द्वारा कलर प्रिंटिंग प्रेस
देहली।

[१५]

सत्य भाषण

इद विद्वानाञ्जन सत्य वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वम् गामहमात्मानं तव पूरुष ॥
॥ ४ । ९ । ७ ॥

पदार्थः—(आञ्जन) हे संसार को व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य को (विद्वान्) जानता हुआ मैं (सत्यम्) सत्य (वक्ष्यामि) बोलूंगा (अनृतम्) असत्य (न) नहीं । (पुरुष) हे सबके अगुआ पुरुष परमेश्वर ! (तव) तेरे दिये हुए (अश्वम्) घोड़े (गाम्) गौ या भूमि और (आत्मानम्) आत्म बल को (अहम्) मैं (सनेयम्) सेवन करूं ।

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा देख कर सदा सत्य ही बोले और पुरुषार्थ पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेवे ।

[१६]

अक्षय भण्डार

दुहे साय दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वत ॥
॥ ४ । ११ । १२ ॥

पदार्थ —वह 'परमेश्वर' (सायम्) सायंकाल में (परि) सब ओर से (दुहे=दुग्धे) पूर्ण करता है (प्रात) प्रात काल (दुहे) पूर्ण करता है (मध्यन्दिनम्) मध्याह्न मे (दुहे) पूर्ण करता है (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु के (ये) जो (दोहा) पूर्ति प्रवाह (संयन्ति) बहुरते रहते हैं (तान्) उनको (अनुपदस्वत) अक्षय (विद्म) हम जानते हैं ।

भावार्थ—परमेश्वर का सदा अक्षय भण्डार है ऐसा जान कर मनुष्य विज्ञान पूर्वक आगे बढ़ता है ।

[१७]

गिरे हुओं को उठाना

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥

॥ ४ । १३ । १ ॥

पदार्थः—(देवा) हे व्यवहार कुशल (देवा) विद्वान् लोगो ! (अवहितम्) अधोगत पुरुष को (उत) अवश्य (पुनः) फिर (उन्नयथ) तुम उठाते हो (उत) और भी (देवाः) हे दानशील (देवाः) महात्माओ ! (आगः) अपराध (चक्रुषम्) करने वाले प्राणी को (पुनः) फिर (जीवयथ) तुम जिलाते हो ।

भावार्थः—महात्मा लोग स्वभाव से ही अधो-गत पुरुषों को ऊंचा करते और मृतक समान अपराधियों को पाप से छुड़ा कर उनका जीवन सुफल कराते हैं। मनुष्य सत्पुरुषों के सत्सग से अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को त्याग कर जीवन सुधारें।

[१८]

घट घट वासी प्रभु

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलाय चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीय ॥ ४। १६। २॥

पदार्थ —(य) जो पुरुष (तिष्ठति) खड़ा होता है या (चरति) चलता है (च) और (य.) जो पुरुष (वञ्चति) ठगी करता है और (य) जो (निलायन्) भीतर घुस कर और (य) जो (प्रतङ्कम्) बाहिर निकल कर (चरति) काम करता है और (द्वौ) दो जने (स निषद्य) एक साथ बैठकर (यत्) जो कुछ (मन्त्रयेते) कानाफूसी करते हैं (तृतीय) तीसरा (राजा) राजा (वरुण) वरणीय वा दुष्ट निवारक वरुण परमेश्वर (तत्) उसे (वेद) जानता है।

भावार्थ—परमेश्वर प्राणियो के गुप्त से गुप्त कर्मों को सर्वथा जानता और उनका यथावत् फल देता है।

[१६]

यह जिस को चाहता है

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं
तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ४ । ३० । ३ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (एव) ही (स्वयम्) आप (देवानाम्) सूर्यादि लोकों (उत) और (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों का (जुष्टम्) प्रिय (इदम्) यह वचन (वदामि) कहता हूँ। 'अर्थात्' (यम्) जिस किस को (कामये) मैं चाहता हूँ (तम्-तम्) उस उसको ही 'कर्मानुसार' (उग्रम्) तेजस्वी (तम्) उसको ही (ब्रह्माणम्) बुद्धिशील ब्रह्मा (तम्) उसीको (ऋषिम्) सन्मार्ग दर्शक ऋषि (तम्) उसीको (सुमेधाम्) उत्तम बुद्धि वाला (कृणोमि) बनाता हूँ।

भावार्थः—परमात्मा सब लोकों और प्राणियों को शरण में रखकर उपदेश करता है कि मैं अपने आज्ञाकारियों को प्रीतिपूर्वक उत्तम गति देता हूँ।

[२०]

संग्राम विजय

समाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम । मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ ॥ ५ । ३ । १ ॥

पदार्थ —(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (विहवेषु) संग्रामों में (मम) मेरा (वर्चः) प्रकाश (अस्तु) होवे । (वयम्) हम लोग (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (तन्वम्) अपना शरीर (पुषेम) पोषें । (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिये (नमन्ताम्) नमें (त्वया) तुझ (अध्यक्षेण) अध्यक्ष के साथ (पृतनाः) संग्रामों को (जयेम) हम जीतें ।

भावार्थ —मनुष्य परमेश्वर में विश्वास करके अपने सब बाहरी और भीतरी शत्रुओं को जीत कर आनन्द भोगें ।

[२१]

पाप त्याग गुण ग्रहण

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या
मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वेदेवा
अभि रक्षन्तु मेह ॥ ५ । ३ । ४ ॥

पदार्थः—(मम) मेरे (यानि) पाने योग्य (इष्टा) इष्ट कर्म (मह्यम्) मुझको (यजन्ताम्) मिलें (मे) मेरे (मनसः) मन का (आकूतिः) संकल्प (सत्या) सत्य (अस्तु) होवे (अहम्) मैं (कतमत् चन) किसी भी (एनः) पाप कर्म को (मा नि गाम्) कभी न प्राप्त होऊं (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (मा) मेरी (इह) इस विषय में (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें ।

भावार्थ.—मनुष्य शुद्ध अन्तः करण से विचार पूर्वक शुभ कर्मों की प्रतिज्ञा करके पूरा करें और छल कपट आदि छोड़ कर सब उत्तम उत्तम गुण प्राप्त करें ।

[२२]

असमृद्धि दूर हट

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥ ५।७।७॥

पदार्थः—(असमृद्धे) हे असमृद्धि ! (परः) परे (अप इह) चली जा (ते) तेरी (हेतिम्) बरछी को (वि नयामसि) हम अलग हटाते हैं (अराते) हे अदान शक्ति ! 'निर्धनता' ! (अहम्) मैं (त्वा) तुझ को (निमीवन्तीम्) निर्बल करने वाली और (नितुदन्तीम्) भीतर चुभने वाली (वेद) जानता हूँ।

भावार्थ—मनुष्य महादुःखदायिनी निर्धनता को प्रयत्नपूर्वक दूर हटावें।

[२३]

दुर्गुण नाश

अप जहि यातुधानानप कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे॥
॥ ५ । १४ । २ ॥

पदार्थः—(यातुधानान्) पीड़ा देने वालों को (अप जहि) नाश कर दे। (अथो) और भी (यः) जो (अस्मान्) हमें (दिप्सति) मारना चाहता है (तम उ) उसे भी (त्वम्) तू (ओषधे) हे अन्न आदि ओषधि के समान तापनाशक! (जहि) नाश कर।

भावार्थः—मनुष्य शुभगुण प्राप्त कर के दुर्गुणों का नाश करें जैसे अन्न सेवन से भूख का नाश होता है।

[२४]

वेद विद्या रहित राष्ट्र नष्ट

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥
॥ ५ । १९ । ४ ॥

पदार्थ—(सा) वह (ब्रह्मगवी) ब्रह्मवाणी (पच्यमाना) पचायी 'तपाई' जाती हुई (यावत्) जब तक (अभि) चारों ओर (विजङ्गहे) फड़फड़ाती रहती है। वह (राष्ट्रस्य) राज्य का (तेजः) तेज (निर्हन्ति) मिटा देती है और (न वीरः) न कोई वीर पुरुष (वृषा) ऐश्वर्यवान् (जायते) उत्पन्न होता है।

भावार्थः—जहां वेद विद्या का निरादर होता है, वह राज्य सब नष्ट हो जाता है, और सब लोग निर्बल हो जाते हैं।

भूमिका

वेद ज्ञान विज्ञान के अद्भुत भण्डार है। वे सब सद्विद्याओ के पुस्तक हैं। ससार मे जितना ज्ञान, विद्याए और कलाए हैं उन सब का आदि स्रोत वेद है।

सृष्टि उत्पत्ति पर जब मानव ससार मे आया तो यह विश्व उसके लिये एक पहेली थी। उसे पता नही था कि यह ससार क्या है ? वह कहा से आया है ? क्यो आया है और उसे किधर जाना है ? उस समय परम पिता परमात्मा ने मानव बुद्धि को प्रबुद्ध करने के लिये वेद ज्ञान दिया। अथर्ववेद का ज्ञान अङ्गिरा ऋषि के हृदय मे हुआ था।

अथर्ववेद मे ज्ञान, कर्म, एव उपासना तीनो का सुन्दर सम्मिश्रण है। इसमे जहा प्राकृतिक रहस्यो का उद्घाटन है वहा गूढ आध्यात्मिक रहस्यो का विवेचन भी है। यह धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साधनो की कुञ्जी है। जीवन एक सतत् सग्राम है। अथर्ववेद जीवन सग्राम मे सफलता प्राप्त करने के उपाय बताता है।

[२५]

ब्राह्मण के अपमान से राष्ट्र नष्ट

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥
॥ ५ । १९ । ६ ॥

पदार्थः—(यः) जो (उग्रः) प्रचण्ड (राजा) राजा (मन्यमानः) गर्व करता हुआ (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (जिघत्सति) नष्ट करना चाहता है (तत्) वह (राष्ट्रम्) राज्य (परा सिच्यते) बह जाता है (यत्र) जहां (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता (जीयते) दबाया जाता है ।

भावार्थः—वेद वेत्ताओं को सताने वाले राजा का राज्य सर्वथा नष्ट हो जाता है ।

[२६]

कृमि नाश

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥

॥ ५ । २३ । १३ ॥

पदार्थ —(च) और (सर्वेषाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीडों का (च) और (सर्वासाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीडों की स्त्रियों का (शिर) सिर (अश्मना) पत्थर से (भिनद्मि) मैं फोडता हूँ और (मुखम्) मुख (अग्निना) अग्नि से (दहामि) जलाता हूँ।

भावार्थ —जैसे किसी वस्तु को अग्नि में जला कर अथवा पत्थर पर तोड कर नष्ट कर देते हैं वैसे ही मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी दोषों का नाश करे।

[२७]

तीन सुख

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥ ५। २८। १॥

पदार्थः—यह 'परमेश्वर' (नव) नौ (प्राणान्) जीवन शक्तियों को (नवभिः) नौ 'इन्द्रियों' के साथ (शत शारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (सं मिमीते) यथावत् मिलाता है। 'उसी करके' (हरिते) दरिद्रता हरने वाले पुरुषार्थ में (त्रीणि) तीनों (रजते) प्रिय होने वाले प्रबन्ध 'या रूप' में (त्रीणि) तीनों और (अयसि) प्राप्त योग्य कर्म 'या गुणों' में (त्रीणि) तीनों 'सुख' (तपसा) सामर्थ्य से (आविष्ठितानि) स्थित किये गये हैं।

भावार्थः—जिस परमात्मा ने नवद्वार पुर शरीर में दोनों कानों दोनों नेत्रों, दोनों नथनों, मुख, पायु और उपस्थ, नव इन्द्रियों में नव शक्तियां रक्खी हैं उसी जगदीश्वर ने बताया है कि मनुष्य उत्तम पुरुषार्थ, उत्तम प्रबन्ध और उत्तम कर्म से चांदी सोना एकत्रित करके तीन सुख अर्थात् अन्न मनुष्य और पशुओं को बढ़ायें।

[२८]

हिंसक प्राणियों का नाश

अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य जिह्वां नि
तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्ययतमो जघासाग्ने यविष्ठ
प्रति तं शृणीहि ॥ ५ । २९ । ४ ॥

पदार्थ—(अक्ष्यौ) उसकी दोनों आंखें (नि विध्य) छेद डाल, (हृदयम्) हृदय (नि विध्य) छेद डाल, (जिह्वाम्) जीभ (नितृन्द्धि) काट डाल और (दत) दांतों को (प्रमृणीहि) तोड़ दे। (यतम) जिस किसी (पिशाच) मांस खाने वाले पिशाच ने (अस्य) इस का (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महाबलवान् (अग्ने) विद्वन् पुरुष! (तम्) उस को (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकड़े टुकड़े कर दे।

भावार्थ—राजा हिंसक प्राणियों का यथावत् नाश करता रहे।

[२६]

आगे बढ़ो

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ॥

॥ ५ । ३० । ७ ॥

पदार्थ—(पथः) मार्ग के (उदयनम्) चढ़ाव को (विद्वान्) जानता हुआ (अनुहूतः) प्रीति से बुलाया गया तू (पुनः) फिर (आ इह) आ। (आरोहणम्) चढ़ना और (आक्रमणम्) आगे बढ़ना (जीवतो जीवतः) प्रत्येक जीव का (अयनम्) मार्ग है।

भावार्थ—मनुष्य उन्नति के उपायों को जान कर सदा बढ़ता रहे जैसे कि चिउंटी आदि छोटे-छोटे जीव भी ऊंचे चढ़ने में लग रहते हैं।

[३०]

प्रभु गुण गान

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेह्याथर्वण ।
स्तुहि देव सवितारम् ॥ ६ । १ । १ ॥

पदार्थ —(आथर्वण) हे निश्चल ब्रह्म के जानने वाले महर्षि ! (देवम्) प्रकाशस्वरूप (सवितारम्) सबके प्रेरक परमात्मा को (दोषो) रात्रि में भी (गाय) गा (बृहद्) विशाल रूप से (गाय) गा (द्युमद्) स्पष्ट रीति से (धेहि) धारण कर और (स्तुहि) बड़ाई कर।

भावार्थ —विद्वान् पुरुष परमेश्वर के गुणों को हृदय में धारण करके संसार में सदा प्रकाशित करे।

[३१]

विद्या प्राप्ति

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परिष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापगा असः ॥ ६ । ८ । १ ॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (लिबुजा) बढाने वाले आश्रय के साथ उत्पन्न होने वाली बेल (वृक्षम्) वृक्ष को (समन्तम्) सब ओर से (परिषस्वजे) लिपट जाती है (एव) वैसे ही 'हे विद्या' (माम्) मुझ से (परिस्वजस्व) तू लिपट जा (यथा) जिससे तू (माम्, कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगाः) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे।

भावार्थ—*ब्रह्मचारी पूरा तपश्चरण करके विद्या* को इस प्रकार प्राप्त करे जिससे वह सदा स्मरण करके उससे उपकार लेता रहे।

[३२]

ईर्ष्या नाश

ईर्ष्याया ध्राजि प्रथमा प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्नि हृदय्य शोक त ते निर्वापयामसि ॥
॥ ६ । १८ । १ ॥

पदार्थ —'हे मनुष्य ! (ते) तेरी (इर्ष्याया) डाह की (प्रथमस्या) पहली (ध्राजिम्) गति को (उत) और (प्रथमस्या) पहिली गति की (अपराम्) दूसरी गति को (हृदयम्) हृदय मे भरी (तम्) सताने वाली (अग्निम्) अग्नि और (शोकम्) शोक को (नि) सर्वथा (वापयामसि) हम नष्ट करते हैं।

भावार्थ —मनुष्य दूसरो की वृद्धि देखकर कभी डाह न करें किन्तु दूसरे की उन्नति मे अपनी उन्नति जानें।

[३३]

ओ पापी विघ्न मुझे छोड़ दे

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविहृतम् ॥
॥ ६ । २६ । १ ॥

पदार्थ—(पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (मा) मुझे (अवसृज) छोड़ दे और (वशी) वश में पड़ने वाला (सन्) होकर तू (नः) हमें (मृडयासि) सुख दे। (पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (भद्रस्य) आनन्द के (लोके) लोक में (मा) मुझे (अविहृतम्) पीड़ा रहित (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) रख।

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थ से विघ्नों को हटाते हैं, वे आनन्द पाते हैं।

[३४]

सब का बल मुझे दे

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ
त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ६ । ३८ १ ॥

पदार्थ —(या) जो (त्विषि) ज्योति (सिंहे) सिंह मे (व्याघ्रे) बाघ मे (उत) और (पृदाकौ) फुकारते हुए साँप मे और (या) जो (अग्नौ) अग्नि मे (ब्राह्मणे) वेदवेत्ता पुरुष मे और (सूर्ये) सूर्य मे है (या) जिस (देवी) दिव्य गुण वाली, (सुभगा) बडे ऐश्वर्य वाली 'ज्योति' ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (न) हमे (आ) आकर (एतु) मिले ।

भावार्थ —मनुष्य ससार के सब बलवान् तेजस्वी पदार्थों मे सयम करके ऐश्वर्य और पराक्रम प्राप्त करे ।

अथर्ववेद युद्ध और शान्ति का वेद है। शरीर मे शान्ति किस प्रकार रहे उसके लिये नाना प्रकार की औषधियो का वर्णन है। परिवार मे शान्ति किस प्रकार रह सकती है उसके लिये इसमे दिव्य नुसखे हैं। राष्ट्र और विश्व मे शान्ति किस प्रकार रह सकती है उन उपायो का वर्णन है। यदि कोई देश शान्ति को भग करना चाहे तो उमसे किस प्रकार लोहा लेना, किस प्रकार युद्ध करना शत्रु के आक्रमणो से अपने को किस प्रकार बचाना और उनके कुचक्रो को किस प्रकार समाप्त करना— इत्यादि सभी बातो का विशद वर्णन अथर्ववेद मे है।

अथर्ववेद] मे कृत्या और अभिचार आदि शब्दो को देख कर कुछ लोग इसे जादू और टोनो का वेद मानते हैं परन्तु यह बात ठीक नही। कृत्या आदि शब्द विशेष प्रकार के शस्त्र अस्त्रो के नाम हैं।

अथर्ववेद को ब्रह्मवेद, अथर्वाङ्गिरसः छन्दवेद अमृतवेद और आत्मवेद भी कहते हैं।

अथर्ववेद मे २० काण्ड १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ५९७७ मन्त्र हैं। गणना प्रकार के अनुसार मन्त्र सख्या के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद भी है।

[३५]

मैं यशस्वी होऊं

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥
॥ ६ । ३१ । ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य (यशा) यशवाला (अग्निः) अग्नि (यशाः) यश वाला और (सोमः) चन्द्रमा (यशाः) यश वाला (अजायत) हुआ है। (यशाः) यश चाहने वाला (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब (भूतस्य) संसार के बीच (यशस्तमः) अति यशस्वी (अस्मि) हूं।

भावार्थ.—मनुष्य संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर महायशस्वी होवे।

[३६]

निर्वैरता

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥

॥ ६।४०।३ ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे महाप्रतापी परमेश्वर! (नः) हमारे लिये (अधरात्) नीचे से (अनमित्रम्) निर्वैरता (नः) हमारे लिए (उत्तरात्) ऊपर से (अनमित्रम्) निर्वैरता (नः) हमारे लिए (पश्चात्) पीछे से (अनमित्रम्) निर्वैरता और (पुर) आगे से (अनमित्रम्) निर्वैरता (कृधि) तू कर।

भावार्थ—मनुष्य सब स्थान और सब काल में शान्ति दायक कर्म करें।

[३७]

घर और दुर्गों का बाह्य वातावरण

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणी ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥
॥ ६ । १०६ । १ ॥

पदार्थ.—'हे मनुष्य !' (ते) तेरे (आयने) आगमन मार्ग और (परायणे) निकास में (पुष्पिणीः) फूल वाली (दूर्वाः) दूब, घासें (रोहन्तु) उगें। (वा) और (तत्र) वहां (उत्सः) कुंआ (वा) और (पुण्डरीकवान्) कमलों वाला (ह्रदः) ताल (जायताम्) होवे।

भावार्थ.—मनुष्य दुर्ग और घरों के आस पास दृश्य को सुख बढ़ाने वाले दूब, जल, कमल आदि से स्वस्थता के लिये सुशोभित रक्खें।

[३८]

हम पाप से बचें

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्य विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥

॥ ६ । ११५ । ३ ॥

पदार्थ —(द्रुपदात्) काष्ट बन्धन से (मुमुचान इव) छुटे हुए पुरुष के समान (स्विन्नः) पसीने में डूबे हुए (स्नात्वा) स्नान करके (मलात्) मल से 'छुटे हुए के' (इव) समान (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले छन्ना वा अग्नि से (पूतम्) शुद्ध किये हुये (आज्यम् इव) घृत के समान (विश्वे) सब 'दिव्यगुण' (मा) मुझ को (एनसः) पापसे (शुम्भन्तु) शुद्ध करें।

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक सर्वथा पापों से शुद्ध रह कर सदा आनन्द भोगें।

[३६]

ब्रह्म विद्या का उपदेश

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा
योऽवदन्नृतानि।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत
नाम धेनोः ॥ ७ । १ । १ ॥

पदार्थः—(ये) जिन लोगों ने 'एक' (धीती) अपने कर्म से (वाचः) वेदवाणी करके (अग्रम्) श्रेष्ठपनको (वा) निश्चय करके (अनयन्) पाया है (वा) और (ये) जिन्होंने 'दूसरे' (मनसा) विज्ञान से (ऋतानि) सत्य वचन (अवदन्) बोले हैं और जो (तृतीयेन) तीसरे 'हमारे कर्म और विज्ञान से परे' (ब्रह्मणा) प्रवृद्ध ब्रह्म 'परमात्मा' के साथ (वावृधानाः) वृद्धि करते रहे है उन लोगों ने (तुरीयेण) चौथे 'कर्म विज्ञान' और ब्रह्म से अथवा धर्म, अर्थ और काम से प्राप्त मोक्ष पद' के साथ (धेनोः) तृप्त करने वाली शक्ति, परमात्मा के (नाम) नाम अर्थात् तत्व को (अमन्वत) जाना है।

भावार्थः—जो योगी जन वेद के तत्व को जान कर कर्म करते और विज्ञान पूर्वक सत्य का उपदेश करके परमेश्वर की अपार महिमा को खोजते आगे बढ़ते जाते हैं, वे ही मोक्ष पद पाकर परमात्मा की आज्ञा में विचरते हुए स्वतन्त्रता से आनन्द भोगते हैं।

[४०]
आत्मिक उन्नति

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरम् ॥ ७।८।१ ॥

पदार्थ — हे मनुष्य ! (भद्रात्) एक मंगल कर्म से (श्रेयः) अधिक मंगलकारी कर्म को (अधि) अधिकार पूर्वक (प्र इह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का पालक परमेश्वर (ते) तेरा (पुर एता) अग्रगामी (अस्तु) होवे (अथ) फिर तू (इमम्) इस 'अपने आत्मा' को (अस्या पृथिव्याः) इस पृथिवी के (वरे) श्रेष्ठ फल में (आरे शत्रुम्) शत्रुओं से दूर (सर्ववीरम्) सर्ववीर सब में वीर (आ) सब ओर से (कृणुहि) बना।

भावार्थ —जो मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से अधिक अधिक उन्नति करते हुए आगे बढ़े जाते हैं, वे ही सर्ववीर निर्विघ्नता से अपना जीवन सफल करते हैं।

[४१]

धन और बल

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ ७ । १७ ॥

पदार्थः—(ईशानः) ऐश्वर्यवान् (जगतः पतिः) जगत् का पालने वाला (धाता) धाता विधाता 'सृष्टिकर्त्ता' (न.) हमें (रयिम्) धन (दधातु) देवे (सः) वही (नः) हम को (पूर्णेन) पूर्ण बल से (यच्छतु) ऊंचा करे।

भावार्थ—गृहस्थ लोग जगत् पिता परमात्मा के अनुग्रह से प्रयत्न करके धन और बल बढ़ाकर सुखी रहें।

[४२]

शुभ कर्म करो

स्वार्क्त मे द्यावपृथिवी स्वार्क्त मित्रो अकरयम् ।
स्वार्क्त मे ब्रह्मणस्पति स्वार्क्त सविता करत् ॥
॥ ७।३०।१ ॥

पदार्थ —(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी ने (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत किया है। (अयम्) इस (मित्र) मित्र 'माता पिता आदि' ने (स्वाक्तम्) स्वागत (अक) किया है। (ब्रह्मण) वेद विद्या का (पति) रक्षक 'आचार्य" (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत और (सविता) प्रजा प्रेरक शूर पुरुष (स्वागतम्) स्वागत् (करत्) करे।

भावार्थ —मनुष्य सदा ऐसे शुभ कर्म करे जिससे संसार के सब पदार्थ और विद्वान् लोग उसके उपकारी होवें।

[४३]

आदर्श मित्रता

अक्ष्यौ नौ मधुसकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥
॥ ७ । ३६ । १ ॥

पदार्थ —(नौ) हम दोनो की (अक्ष्यौ) दोनो आंखें (मधुसकाशे) ज्ञान की प्रकाश करने वाली और (नौ) हम दोनो का (अनीकम्) मुख (समञ्जनम्) यथावत् विकास वाला 'होवे' (माम्) मुझ को (हृदिमन्तः) अपने हृदय के भीतर (कृणु) करले, (नौ) हम दोनो का (मन) मन (इत्) भी (सह) एकमेल (असति) होवे।

भावार्थ —मनुष्य आपस मे प्रीतियुक्त रह कर सदा धर्म युक्त व्यवहार करके प्रसन्न रहें।

[४४]

पराक्रम

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य श्राहितः ।
गोजिद्‌भूयासमश्वजिद् धनजयो हिरण्यजित् ॥
॥ ७ । ५० । ८ ॥

पदार्थ.—(कृतम्) कर्म (मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ मे और (जयः) जीत (मे) मेरे (सव्ये) बायें हाथ मे (श्राहित.) स्थित है। मैं (गोजित्) भूमि जीतने वाला (अश्वजित्) घोड़े जीतने वाला (धनजय.) धन जीतने वाला (भूयासम्) रहूं।

भावार्थ:—मनुष्य पराक्रमी होकर सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त कर सुखी होवें।

अथर्ववेद की नौ शाखायें मानी जाती हैं। इस का ब्राह्मण गोपथ है और उपवेद अथर्ववेद है।

इस संकलन में श्री पं० क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी द्वारा रचित भाष्य से १०० मन्त्रों का चयन किया गया है। मन्त्रों के अन्त में दी अङ्क काण्ड सूक्त और मन्त्र के बोधक हैं।

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से चारों वेदों के शतक प्रकाशित हो गये। घर घर में वेद की पुस्तकें हों। हम वेद पढ़ें और वेद हमारे जीवन का अङ्ग बनें तदर्थ ही यह प्रयास है। यदि जनता ने इन शतकों को अपनाया तो हम वेद के सम्बन्ध में इसी प्रकार का महत्वपूर्ण और सुन्दर साहित्य देने का प्रयास करेंगे। यदि कहीं कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें जिससे आगामी संस्करण में सुधार हो सके।

वेद सदन   जगदीश चन्द्र विद्यार्थी
८ई, कमला नगर,
दिल्ली-६

[४५]

इन्द्रिय निग्रह

शुम्भनी द्यावा पृथिवी अन्ति सुम्ने महिव्रते ।
आप सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहस ॥
॥ ७ । ११२ । १ ॥

पदार्थ —(शुम्भनी) शोभायमान (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) 'भीतरी' गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े बड़े 'नियम' वाले हैं । (देवी) उत्तम गुण वाली (सप्त) सात (आप) व्यापनशील इन्द्रियां 'दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख' (सुस्रुवु) 'हमें' प्राप्त हुई हैं (ता) वे (न) हमें (अंहस) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ।

भावार्थ —जैसे सूर्य और पृथिवी लोक ईश्वर नियम से अपनी अपनी गति पर चलकर वृष्टि अन्न आदि से उपकार करते हैं वैसे ही मनुष्य इन्द्रियों को नियम में रखकर अपराधों से बचें ।

[४८]

चावल और जौ का भोजन

शिवौ ते स्ता व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥
॥ ८ । २ । १८ ॥

पदार्थ —'हे मनुष्य'। (ते) तेरे लिये (व्रीहियवौ) चावल और जौ (शिवौ) मंगल करने वाले (अबलासौ) बल के न गिराने वाले (अदोमधौ) भोजन में हर्ष करने वाले (स्ताम्) हों (एतौ) ये दोनों (यक्ष्मम्) राजरोग को (वि) विशेष करके (बाधेते) हटाते हैं (एतौ) यह दोनों (अंहस) कष्ट से (मुञ्चत) छुड़ाते हैं।

भावार्थ —मनुष्यों को चावल और जौ आदि सात्विक अन्न का भोजन प्रसन्न होकर करना चाहिये, जिस से वह पुष्टिकारक हो।

[४६]

सत्यासत्य विवेक

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च
वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमो
ऽवति हन्त्यासत् ॥ ८।४।१२॥

पदार्थः—(चिकितुषे) ज्ञानी (जनाय) पुरुष के लिये (सुविज्ञानम्) सुगम विज्ञान है 'कि' (सत्) सत्य (च च) और (असत्) असत्य दोनों में से (यत्) जो (सत्यम्) सत्य और (यतरत्) जो कुछ (ऋजीयः) अधिक सीधा है (तत्) उसको (इत्) ही (सोमः) सर्व प्रेरक राजा (अवति) मानता है और (असत्) असत्य को (हन्ति) नष्ट करता है ।

भावार्थः—विवेकी मर्मज्ञ राजा सत्य और असत्य का निर्णय करके सत्य को मानता और असत्य को छोड़ता है ।

[५०]

उसे कौन जानता है

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः
कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ । १ । ६ ॥

पदार्थः—(कः) कौन पुरुष (तम्) उस परमेश्वर को (प्र वेद) अच्छे प्रकार जानता है (कः उ) किस ने ही (तम्) उसको (चिकेत) समझा है (यः) जो परमेश्वर (अस्याः) इस वेद वाणी के (हृदः) हृदय का (कलशः) कलश (अक्षितः) अक्षय (सोमधानः) अमृत का पात्र है (सः) वह (सुमेधाः) सुबुद्धि (ब्रह्मा) ब्रह्मा 'ब्रह्मज्ञानी वेदवेत्ता' (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (मदेत) आनन्द पावे ।

भावार्थ—चतुर ब्रह्मज्ञानी पुरुष परमेश्वर और उसकी वेद वाणी का तत्व जान कर प्रसन्न होते हैं ।

[५१]

माता पिता बल दें

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥
॥ ९ । १ । १७ ॥

पदार्थ:—(यथा) जैसे (मक्षा) संग्रह करने वाले पुरुष 'अथवा भ्रमर आदि जन्तु' (इदम्) ऐश्वर्य देने वाले (मधु) ज्ञान 'रस' को (मधौ) ज्ञान 'या मधु के ऊपर (अधि) ठीक ठीक (न्यञ्जन्ति) मिलाते जाते हैं (एव) वैसे ही (अश्विना) हे चतुर माता पिता ! (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश (तेजः) तीव्रता (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (ध्रियताम्) धरा जावे।

भावार्थ—जिस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अनेक बुद्धिमानों से निरन्तर शिक्षा पाते हैं, अथवा जैसे भ्रमर आदि कीट पुष्प फल आदि से रस लेकर मधु एकत्रित करते जाते हैं वैसे ही माता पिता अपने सन्तानों को उचित शिक्षा देकर बली और पराक्रमी बनावें।

[५२]

अतिथि को खिला कर खाओ

एषा वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥
॥ ९ । ६ (३) । ७ ॥

पदार्थ –(यत्) क्योंकि (एषः वै) यही (अतिथि) अतिथि (श्रोत्रियः) श्रोत्रिय 'वेद जानने वाला पुरुष है' तस्मात् उस 'अतिथि' से (पूर्वः) पहले 'गृहस्थ' (न) न (अश्नीयात्) जीमे ।

भावार्थः—गृहस्थ का धर्म है कि अतिथि को भोजन कराके आप भोजन करे ।

[५३]

कर्मानुसार शरीर

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो
मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं
चिक्युर्न नि नि चिक्युरन्यम् ॥ ६।१०।१६ ॥

पदार्थः—(स्वधया) अपनी धारणशक्ति से (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्यः) अमरण स्वभाव वाला 'जीव' (मर्त्येन) मरण स्वभाव वाले 'शरीर' के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होकर (अपाङ्) नीचे को जाता हुआ 'वा' (प्राङ्) ऊपर को जाता हुआ (एति) चलता है। (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) नित्य चलने वाले (विषूचीना) सब ओर चलने वाले और (वियन्ता) दूर दूर चलने वाले हैं, 'उन दोनों में से' (अन्यम्, अन्यम्) एक एक को (नि चिक्युः) 'विवेकियों ने' निश्चय करके जाना है 'और मूर्खों ने' (न) नहीं (नि चिक्युः) निश्चय किया है।

भावार्थः—जीवात्मा अपने कर्मानुसार शरीर पाता और अधोगति वा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है। जीवात्मा और शरीर के भेद को विद्वान् जानते हैं और मूर्ख नहीं जानते।

[५४]

सादा शुद्ध आहार

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्ध-मुदकमाचरन्ती ॥ ६ । १० । २० ॥

पदार्थः—'हे प्रजा, सब स्त्री पुरुषो !' (सूयवसात्) सुन्दर अन्न आदि भोगने वाली और (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूयाः) हो (अथ) फिर (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें। (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा ! (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू 'हिंसा न करने वाली गौ के समान' (तृणम्) घास 'अल्प-मूल्य पदार्थ' को (अद्धि) खा और (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को (पिब) पी।

भावार्थ.—जैसे गौ अल्प मूल्य घास खाकर और शुद्ध जल पीकर दूध घी आदि देकर उपकार करती है, वैसे ही मनुष्य थोड़े व्यय से शुद्ध आहार विहार करके संसार का सदा उपकार करे।

[५५]

परमात्मा के अनेक नाम

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातरिश्वानमाहुः ॥ ६ । १० । २८ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) अग्नि 'सर्वव्यापक परमेश्वर' को (इन्द्रम्) इन्द्र 'बड़े ऐश्वर्य वाला' (मित्रम्) मित्र (वरुणम्) वरुण 'श्रेष्ठ' (आहुः) वे (तत्त्वज्ञानी) कहते हैं (अथो) और (सः) वह (दिव्य.) प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर पालन सामर्थ्य वाला (गुरुत्मान्) स्तुति वाला 'गुरु आत्मा महान् आत्मा' है। (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (एकम्) एक (सत्) सत्ता वाले 'ब्रह्म' को (बहुधा) बहुत प्रकार से (वदन्ति) कहते हैं, (अग्निम्) उसी अग्नि 'सर्व व्यापक परमात्मा को (यमम्) नियन्ता और (मातरिश्वानम्) आकाश में श्वास लेता हुआ 'अर्थात् आकाश में व्यापक' (आहुः) वे बताते हैं।

भावार्थ.—विद्वान् लोग परमात्मा के अनेक नामों से उसके गुण कर्म स्वभाव को जानकर और उसकी उपासना करके संसार में उन्नति करें।

[५६]

मुझ से पाप दूर हो

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १० । १ । १३

पदार्थ—(यथा) जैसे (वात) वायु (भूम्या) भूमि से (रेणुम) रेणु 'धूलि' को (च) और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (अभ्रम्) मेघ को (च्यावयति) सरका देता है (एव) वैसे ही (मत्) मुझे से (सर्वम्) सब (ब्रह्मनुत्तम्) ब्राह्मणों द्वारा हटाया गया (दुर्भूतम्) पाप (अप अयति) दूर चला जावे।

भावार्थ—मनुष्य सदुपदेश पाकर पापकर्म छोड़ने में शीघ्रता करे।

॥ मन्त्रानुक्रम ॥

[५८]

जीव का स्वरूप

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख ॥ १० । ८ । २७ ॥

पदार्थ—हे जीवात्मा !" (त्वम्) तू (स्त्री) स्त्री, (त्वम्) तू (पुमान्) पुरुष, (त्वम्) तू (कुमार) कुमार लड़का' (उत वा) अथवा (कुमारी) कुमारी 'लड़की' (असि) है। (त्वम्) तू (जीर्ण) स्तुति किया गया 'होकर' (दण्डेन) दण्ड 'दमन सामर्थ्य' से (वञ्चसि) चलता है, (त्वम्) तू (विश्वतो मुख) सब ओर मुखवाला 'बड़ा चतुर होकर' (जात) प्रसिद्ध (भवसि) होता है।

भावार्थ—जैसे परमात्मा मे कोई लिंग विशेष नही है, वैसे ही जीवात्मा मे विशेष चिह्न नही है। वह शरीर के सम्बन्ध से स्त्री पुरुष लड़का लड़की आदि होता है और शत्रुओ का दमन करके सब ओर दृष्टि करता हुआ धर्मात्मा होकर स्तुति और कीर्ति पाता है।

[५६]

ईश्वर के ज्ञान से निर्भयता

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीर-मजरं युवानम् ॥ १० । ८ । ४४ ॥

पदार्थ—(अकाम.) निष्काम (धीर.) धीर 'धैर्यवान्' (अमृत.) अमर (स्वयंभू.) अपने आप वर्त्तमान वा उत्पन्न (रसेन) रस 'वीर्य वा पराक्रम' से (तृप्त.) तृप्त अर्थात् परिपूर्ण 'परमात्मा' (कुतश्चन) कहीं से भी (ऊनः) न्यून (न) नहीं है (तम् एव) उस ही (धीरम्) धीर 'बुद्धिमान्' (अजरम्) अजर 'अक्षय' (युवानम्) युवा 'महाबली' (आत्मानम्) आत्मा 'परमात्मा' को (विद्वान्) जानता हुआ पुरुष (मृत्योः) मृत्यु 'मरण वा दुःख' से (न.) नहीं (बिभाय) डरा है।

भावार्थ:—जो मनुष्य निष्काम, बुद्धिमान् धैर्यवान् आदि गुण विशिष्ट परमात्मा को जान लेते हैं, वे परोपकारी धीर वीर पुरुष मृत्यु वा विपत्ति से निर्भय होकर आनन्द भोगते हैं।

[६०]

प्रभो ! पाप से बचा

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परिणो वृङ्ग्धि मा क्रुध । मा त्वया समरामहि ॥ ११ । २ । २० ॥

पदार्थ—'हे रुद्र परमेश्वर' (न) हमें (मा हिंसीः) मत कष्ट दे, (न) हमें (अधि) ईश्वर होकर (ब्रूहि) उपदेश कर (न) हमें 'पाप से' (परि वृङ्ग्धि) सर्वथा अलग रख, (मा क्रुध) क्रोध मत कर। (त्वया) तेरे साथ (मा राम् अरामहि) हम समर 'युद्ध' न करें।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा मे चलते हैं, वे पुरुषार्थी पुरुष अपराध से बच कर सदा सुखी रहते हैं।

[६२]

ब्रह्मचर्य महिमा

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्वराभरत् ॥
॥ ११ । ५ । १९ ॥

पदार्थ—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचय 'वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन' (तपसा) तप से (देवा) विद्वानो ने (मृत्युम्) मृत्यु 'मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि' को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य नियम पालन से (ह) ही (इन्द्र) सूर्य ने (देवेभ्य) उत्तम पदार्थो के लिये (स्व) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है।

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदो को पढने और इन्द्रियो को वश मे करने से आलस्य निर्धनता आदि दूर करके मोक्ष सुख प्राप्त करते है और सूर्य ईश्वर नियम पूरा करके अपने प्रकाश से ससार मे उत्तम पदार्थ प्रकट करता है।

[८२]

शत्रुओं पर आक्रमण

उत्तिष्ठत स नह्यध्वमुदारा केतुभि सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥

॥ ११ । १० ॥ १ ॥

पदार्थ —(उदारा) हे उदार पुरुषो ! 'बड़े अनुभवी लोगो !' (उत् तिष्ठत) उठो और (केतुभि सह) झण्डो के साथ (सनह्यध्वम्) कवचो को पहनो 'जो' (सर्पा) सर्प 'सर्पों के समान हिंसक' (इतर जना) पामर जन (रक्षासि) राक्षस हैं (अमित्रान् अनु) उन शत्रुओ पर (धावत) धावा करो।

भावार्थ —महानुभवी शूरवीर पुरुष कवच आदि पहन कर और ध्वजा पताका अस्त्र शस्त्र लेकर शत्रुओ पर चढ़ें।

[६६]

वेद ज्ञानी का जीवन सफल

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ।
॥ १२ । ४ । १८ ॥

पदार्थः—(य.) जो 'विद्वान्' (अस्या) इस 'वेद वाणी' के (ऊधः) सींचने को (अथो उत) और भी (अस्या) इसके (स्तनान्) गर्जन शब्दों 'बड़े उपदेशों को' (न) अब 'विद्या प्राप्त करके' (वेद) जानता है। वह 'वेदवाणी' (उभयेन) दोनों 'इह लोक और परलोक के सुख' से (एव) ही (अस्मै) इस ब्रह्मज्ञानी' को (दुहे) भर देती है, (च. इत्= चेत्) जो (वशाम्) वश। 'कामना योग्य वेदवाणी' (दातुम् अशकत्) दे सका है।

भावार्थ—जब मनुष्य वेदों के पवित्र लाभों और उपदेशों को समझ लेता है और संसार मे प्रकाश करता है, वह इस जन्म और दूसरे जन्म का आनन्द पाता है।

[६७]

वैरियों का नाश

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥

॥ १३ । १ । ३२ ॥

पदार्थः—(देव) हे विजय चाहने वाले ! (सूर्य) हे सर्व प्रेरक राजन् ! (उद्यन् त्वम्) ऊंचा चढ़ता हुआ तू (मे) मेरे (सपत्नान्) वैरियों को (अव जहि) मार गिरा। (एनान्) इन 'शत्रुओं' को (अश्मना) पत्थर 'आदि गिराने' से (अव जहि) मार गिरा, (ते) वे लोग (अधमम्) बड़े नीचे (तमः) अन्धकार में (यन्तु) जावें।

भावार्थः—राजा को योग्य है कि न्याय व्यवहार में प्रकाशमान होकर शत्रुओं को यथा अपराध दण्ड देकर कारागार में पीड़ा देवें।

[६८]

वेद अपमानकर्त्ता को दण्ड

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ्ङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥
॥ १३ । १ । ५६ ॥

पदार्थ—(यः) जो कोई (प्रत्यङ्) प्रतिकूल गामी पुरुष (गाम्) वेद वाणी को (पदा) पग से तिरस्कार के साथ (स्फुरति) ठोकर मारता है (च च) और (सूर्य) सूर्य समान प्रतापी विद्वान् मनुष्य को (मेहति=मेधति) सताता है। (तस्य ते) उस तेरी (मूलम्) जड को (वृश्चामि) मैं काटता हूँ तू (छायाम्) छाया अन्धकार वा अविद्या को (अपरम्) फिर (न) न (करव) फैलाव ।

भावार्थ—जो मनुष्य सत्य वेदवाणी का तिरस्कार करके विद्वानों को कष्ट देवे, उसको लोग दण्ड देकर नाश करें।

[६६]

सुपथ से विचलित न हों

मा प्र गाम पथो वय मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ १३ । १ । ५६ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (पथः) वैदिक मार्ग से (वयम्) हम (मा प्र गाम) कभी दूर न जावें और (मा) न (सोमिनः) ऐश्वर्ययुक्त (यज्ञात्) यज्ञ 'देव पूजा सगतिकरण और दान व्यवहार' से 'दूर जावें ।' (अरातयः) अदानी लोग (नः अन्तः) हमारे बीच (मा स्थु) न ठहरें ।

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा की उपासना करते हुए सदा वैदिक मार्ग पर चलकर श्रेष्ठ कर्म करें और सुपात्रों को योग्य दान देते रहें ।

[७०]

पुत्र पौत्रों के साथ निवास

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥
॥ १४ । १ । २२ ॥

पदार्थ —'हे वधू वर !' (इह एव) यहां 'गृहस्थाश्रम के नियम में' ही (स्तम्) तुम दोनों रहो (मा वि यौष्टम्) कभी अलग मत होओ और (पुत्रै) पुत्रों के साथ तथा (नप्तृभि) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीडा करते हुए (मोदमानौ) हर्ष मनाते हुए और (स्वस्तकौ) उत्तम घर वाले तुम दोनों (विश्वम् आयु) सम्पूर्ण आयु को (वि अश्नुतम्) प्राप्त होओ।

भावार्थ —स्त्री पुरुष दोनों दृढ प्रतिज्ञा करके प्रसन्नतापूर्वक पुत्र पौत्र आदि के साथ धर्म से रह कर पूर्ण आयु भोग कर यशस्वी होवें।

[७१]

सम्राज्ञी

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥
॥ १४ । १ । ४४ ॥

पदार्थ—'हे वधू !' तू (श्वशुरेषु) अपने ससुर आदि 'मेरे पिता आदि गुरजनों' के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी, (उत) और (देवृषु) अपने देवरों 'मेरे बड़े और छोटे भाइयों' के बीच (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो (ननान्दुः) अपनी ननद 'मेरी बहन' की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (उत) और (श्वश्र्वाः) अपनी सासु 'मेरी माता' की (सम्राज्ञी) राजराजेश्वरी (एधि) हो।

भावार्थ:—वधू विद्या और बुद्धि के बल से अपने कर्त्तव्यों में ऐसी चतुर हो कि ससुर, सासु देवर, ननद आदि सब बड़े छोटे जन उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करें।

[७२]

कल्याणी बन

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा
सुयमा गृहेभ्य ।
वीरसूर्देवृकामा स त्वयैधिषीमहि सुमनस्य-
माना ॥ १४ । २ । १७ ॥

पदार्थ—'हे वधू !' तू (गृहेभ्य) घर वालों के लिए (अघोर चक्षु) प्रिय दृष्टि वाली (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली (स्योना) सुख दायिनी (शग्मा) कार्य कुशला (सुशेवा) सुन्दर सेवा योग्य (सुयमा) अच्छे नियमों वाली, (वीरसू) वीरों को उत्पन्न करने वाली और (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्त वाली 'रह' (त्वया) तेरे साथ (सम् एधिषी-महि) हम मिल कर बढ़ते रहें।

भावार्थ—गृहपत्नी कर्म कुशल होकर शुद्ध अन्त करण से सदा सब का हित करे, जिससे सब घर वृद्धि करता जावे।

[७२]

कल्याणी वन

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा स त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १४ । २ । १७ ॥

पदार्थ — हे वधू ! तू (गृहेभ्य) घर वालों के लिए (अघोर चक्षु) प्रिय दृष्टि वाली (अपतिघ्नी) पति को न सताने वाली (स्योना) सुख दायिनी (शग्मा) कार्य कुशला (सुशेवा) सुन्दर सेवा योग्य (सुयमा) अच्छे नियमों वाली, (वीरसू) वीरों को उत्पन्न करने वाली और (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्त वाली 'रह' (त्वया) तेरे साथ (सम् एधिषी महि) हम मिल कर बढ़ते रहें।

भावार्थ —गृहपत्नी कर्म कुशल होकर शुद्ध अन्तःकरण से सदा सब का हित करे, जिससे सब घर वृद्धि करता जावे।

[७४]

मैं शिरोमणि बनूं

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥
॥ १६।३।१ ॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनों का (मूर्धा) सिर और (समानानाम्) समान 'तुल्यगुणी' पुरुषों का (मूर्धा) सिर (भूयासम्) हो जाऊं।

भावार्थ—मनुष्य उद्योग करें कि विद्या धन और सुवर्ण आदि धन से गुणी मनुष्यों को पाकर संसार में शरीर में मस्तिष्क के समान मुखिया होवें।

[७६]

मैं भी प्रकाशमान बनूं

शुक्रो ऽसि भ्राजो ऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता
भ्राज्यासम् ॥ १७ । १ । २० ॥

पदार्थः—'हे परमेश्वर!' तू (शुक्र) शुद्ध 'स्वच्छ निर्मल' (असि) है तू (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है। (स त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज्यासम्) प्रकाशमान रहूं।

भावार्थ—जगदीश्वर के प्रकाशस्वरूप का ध्यान करके मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से संसार में तेजस्वी होवें।

[७७]

सुकर्मी होकर आनन्द भोग

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ १७ । १ । २७ ॥

पदार्थः—(प्रजापतेः) प्रजापति 'प्राणियों के रक्षक' और (कश्यपस्य) कश्यप 'सर्वदर्शक परमेश्वर' के (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (वर्मणा) आश्रय 'वा रक्षा' से (ज्योतिषा) ज्योति से (च) और (वर्चसा) प्रताप से (आवृतः) घेरा हुआ (अहम्) मैं (जरदष्टिः) बड़ाई के साथ प्रवृत्ति 'वा भोजन वाला' (कृतवीर्यः) पूरे पराक्रम वाला, (विहायाः) विविध उपायों वाला (सहस्रायुः) सहस्रों प्रकार से अन्न वाला और (सुकृतः) पुण्य कर्म वाला 'होकर' (चरेयम्) चलता रहूं ।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वपालक, सर्वदर्शक जगदीश्वर का अनेक प्रकार आश्रय लेकर और विविध प्रकार उपाय करके सुकर्मी होकर सदा आनन्द भोगें ।

[७६]

मैं भी प्रकाशमान बनूं

शुक्रो ऽसि भ्राजो ऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता
भ्राज्यासम् ॥ २७ । १ । २० ॥

पदार्थ — हे परमेश्वर ! तू (शुक्र) शुद्ध 'स्वच्छ निर्मल' (असि) है तू (भ्राज) प्रकाशमान (असि) है। (स त्वम्) सो तू (यथा) जैसे (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज) प्रकाशमान (असि) है (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (भ्राजता) प्रकाशमान स्वरूप के साथ (भ्राज्यासम्) प्रकाशमान रहूं।

भावार्थ—जगदीश्वर के प्रकाशस्वरूप का ध्यान करके मनुष्य विद्या आदि उत्तम गुणों से संसार में तेजस्वी होवे ।

[७८]

हम धर्माचरण से यशस्वी बनें

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥ १७ । १ । २९ ॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (ऋतेन) सत्यकर्म से (च) और (सर्वैः ऋतुभिः) सब ऋतुओं से (गुप्त) रक्षा किया हुआ और (भूतेन) बीते हुए से (च) और (भव्येन) होने वाले से (गुप्त) रक्षा किया हुआ हूँ (मा) मुझे (पाप्मा) पाप बुराई (मा प्र आपत्) न पावे (उत) और (मा) न (मृत्यु) मृत्यु पावे, (अहम्) मैं (वाचः) वेदवाणी के (सलिलेन) जल के साथ (अन्त दधे) अन्तर्धान होता हूँ 'डुबकी लगाता हूँ।'

भावार्थ—मनुष्य धर्म का सहारा लेकर सब भूत भविष्यत् और वर्तमान को विचार के सब काल में सुरक्षित रह कर निष्पाप और अमर अर्थात् यशस्वी होवे यही वेदवाणी रूप जल में स्नानक होना है।

[७६]

वेद मानव हितकारी

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।

यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ १८ । १ । २० ॥

पदार्थ.—(सो) वह (चित्) निश्चय करके (नु) अब (भद्रा) कल्याणी (क्षुमती) अन्न वाली (यशस्वती) यश वाली (स्वर्वती) बड़े सुख वाली 'वेदवाणी' (उषाः) उषा 'प्रभात वेला के समान' (मनवे) मनुष्य के लिये (उवास) प्रकाशमान हुई है । (यत्) क्योंकि (ईम्) इस 'वेदवाणी' को (उशन्तम्) चाहने वाले (होतारम्) दानी (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को (उशताम्) अभिलाषी पुरुषों की (क्रतुम् अनु) बुद्धि के साथ (विदथाय) ज्ञान समाज के लिये (जीजनन्) उन्होंने 'विद्वानों ने' उत्पन्न किया है ।

भावार्थ—परमात्मा ने मनुष्य के कल्याण के लिये वेद वाणी को सूर्य के प्रकाश के समान संसार में प्रकट किया है । जो मनुष्य वेद ज्ञाता महाविद्वान् होवे विद्वान् लोग उसको मुखिया बनाकर समाज का सुख बढ़ावें ।

[८०]

वेद विद्या से मोक्ष

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥
॥ १८। १।४१ ॥

पदार्थ—(सरस्वतीम्) सरस्वती 'विज्ञानवती वेद विद्या' को (सरस्वतीम्) उसी सरस्वती को (देवयन्त) दिव्य गुणों को चाहने वाले पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसा रहित व्यवहार मे (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वतीम्) सरस्वती (दाशुषे) अपने भक्त को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थ (दात्) देती है।

भावार्थ—विज्ञानी लोग परिश्रम के साथ आदर पूर्वक वेद विद्या का अभ्यास करके पुण्य कर्म करते और मोक्ष आदि इष्ट पदार्थ पाते हैं।

[८१]

वेद मार्ग पर चलो

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा
गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा न पूर्वे पितर परेता एना जज्ञानाः
पथ्या अनु स्वा ॥ १८ । १ । ५० ॥

पदार्थ—(प्रथम) सब से पहले वर्त्तमान (यम) यम 'न्यायकारी परमात्मा' ने (नः) हमारे लिये (गातुम्) मार्ग (विवेद) जाना (एषा) यह (गव्यूति) मार्ग (उ) कभी (अपभर्तवै) हटा धरने योग्य (न) नहीं है। (यत्र) जिस 'मार्ग' मे (न.) हमारे (पूर्वे) पहले (पितरः) पितर 'पालन करने वाले बड़े लोग' (परेता.) पराक्रम से चलते हैं (एना) उसी से (जज्ञाना) उत्पन्न हुए 'प्राणी' (स्वा) अपनी अपनी (पथ्या अनु) सड़को पर 'चलें'।

भावार्थ—परमात्मा ने पहले से पहले सब के *लिये वेद मार्ग खोल दिया है जिस प्रकार हमारे* पूर्वजो ने उस मार्ग पर चल कर सुख पाया है, उसी वेद मार्ग पर चल कर सब मनुष्य उन्नति करे।

[८२]

स्वयं तप दूसरों को मत तपा

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥
॥ १८ । २ । ३६ ॥

पदार्थ —(अग्ने) हे विद्वन् ! तू (शम्) शान्ति के लिये (तप) तप कर किसी को (अति) (अत्याचार मे (मा तप) मत तपा और किसी के (तन्वम्) शरीर को अत्याचार से (मा तप) मत तपा । (वनेषु) सेवनीय व्यवहारों म (ते) तेरा (शुष्म) बल (अस्तु) होवे और (यत्) जो (हर) तेरा तेज है वह (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अस्तु) होवे ।

भावार्थ —विद्वान् पुरुष ससार मे शान्ति फैलाने के लिये शमदम आदि तप करे और किसी को किसी प्रकार न सतावे । इस विधि से बल तथा उत्तम उत्तम पदार्थ प्राप्त करके पृथिवी पर प्रतापी होवे ।

[८३]

दृढ़ संकल्प से कामना पूर्ति

आकूतिं देवीं सुभगां पुरोदधे चित्तस्यमाता सुहवानो अस्तु।
यां आशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ १६ । ४ । २ ॥

पदार्थः—(देवीम्) दिव्य गुण वाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली (आकूतिम्) संकल्प शक्ति को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं (चित्तस्य) चित्त 'ज्ञान' की (माता) माता 'जननी उत्पन्न करने वाली' वह (नः) हमारे लिये (सुहवा) सहज में बुलाने योग्य (अस्तु) होवे। (याम्) जिस (आशाम्) आशा 'कामना' को (एमि) मैं प्राप्त करूं (सा) वह 'आशा' (मे) मेरे लिये (केवली) सेवनीय (अस्तु) होवे, (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) प्रवेश की हुई (एनाम्) इस 'आशा' को (विदेयम्) मैं पाऊं।

भावार्थः—मनुष्य दृढ़ संकल्पी होकर ज्ञान को बढ़ावे, जिस से वह जिस शुभ कर्म की आशा मन में करे वह पूरी होवे।

[८४]

दोष त्याग

अनुहूव परिहूव परिवाद परिक्षयम् ।
सर्वमे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवित सुव ॥

॥ १६ । ८ । ४ ॥

पदार्थ —(अनुहूवम्) विवाद (परिहूवम्) बकवाद (परिवादम्) अपवाद और (परिक्षवम्) नाक के फुरफुराहट (तान्) इन (रिक्तकुम्भान्) रीते घड़ों निकम्मे कामों को (मे) मेरे (सर्वं) सब 'दोषों' सहित (सवित) हे सर्वप्रेरक परमात्मन्! (परासुव) दूर कर दे।

भावार्थ —मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक दोषों को विचार कर परमेश्वर की उपासना करके दूर करे।